ISSN 2350-1065 MUKTANCHAL
वर्ष 2 अंक 4 अप्रैल - जून 2015

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्तांचल

मूल्य : 50 रुपये

विद्यार्थी मंच

Scanned by CamScanner

अवस्थिति

शोध

संस्तुति

आलेख

07 डॉ. राणा प्रताप : कथालोचना : दशा और दिशा

12 डॉ. अमरनाथ : हिंदी कथा समीक्षा की पड़ताल

16 पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु 'मत कहो आकाश में कुहरा घना है,' पर यही हिंदी कथा-आलोचना है!

समीक्षण

32 डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ समकालीन कहानी: भविष्य की चुनौतियाँ

36 रामनिहाल गुंजन : विजय मोहन सिंह की कथा दृष्टि और हिंदी कथा आलोचना

अनुशीलन

42 विमल वर्मा : छनती-रिसती संवेदनाएँ

47 सेवाराम त्रिपाठी : कितने पाकिस्तान: कुछ विचारणीय मुद्दे

50 सुनीता साव : तुम किसकी हो बिन्नी : भ्रूण हत्या के आवरण में लिपटा स्त्री-दर्द

54 रेखा कुमारी त्रिपाठी : संजीव का कथा साहित्य : एक अनुशीलन

सृजन

विमर्श

57 डॉ. प्रदीप सक्सेना : क्यों न हो कथा-आलोचना में एक और युग- ''देवकीनन्दन खत्री युग''

67 रविकांत : किसान समस्या, प्रेमचंद और जादुई यथार्थवाद

अन्त:पाठ

70 डॉ.पुनीत कुमार राय : हिन्दी की पहली कहानी 'इंदुमती'

72 मृत्युंजय पाण्डेय : योम-ए-आजादी की तैयारी के साल का कथा संदर्भ : 'अमृतसर आ गया है'

संचार

गवेषणा

75 मनीषा झा : युवा कहानी : आंदोलन का यथार्थ

79 डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय : आदिवासी अस्मिता बोध का संकट और हिंदी उपन्यास

कविता

84 विष्णु चंद्र शर्मा : कबीर आए हैं अकेले, कबीर के अनुभव में, बतकही कबीर से, कब कबीर बन सका है

Scanned by CamScanner

आदिवासी अस्मिता बोध का संकट और हिंदी उपन्यास

डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय

भारत एक विशाल देश है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार हमारे देश की जनसंख्या 1.21 अरब है, जो कि चीन के बाद विश्व में सर्वाधिक है। अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत तथा विविधताओं के कारण भारत की सभ्यता संसार की एक प्राचीन सभ्यता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जनजातियों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। ''भारत में जनजातियों की आबादी अफ्रीका के बाद दुनिया में सर्वाधिक है।''[1] ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये लोग भारतीय प्रायद्वीप के मूल निवासी हैं। मूल निवासी होने के कारण ही इन्हें सामान्यतया 'आदिवासी' कहा जाता है। ''हमारे देश में करीब 550 जनज़ातियाँ हैं।''[2] सन् 2011 की जनगणना के अनुसार इनकी जनसंख्या 10.42 करोड़ है, जो कि देश की कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है।

''भारत की जनजातीय जनसंख्या व्यापक रूप से बिखरी हुई है लेकिन कुछ क्षेत्रों में उनकी आबादी काफी घनी है। जनजातीय जनसंख्या का लगभग 85 प्रतिशत भाग 'मध्य भारत' में रहता है जो कि पश्चिम में गुजरात तथा राजस्थान से लेकर पूर्व में पश्चिम बंगाल और उड़ीसा तक फैला हुआ है और जिसके हृदय-स्थल (मध्य भाग) में मध्य प्रदेश, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र तथा तेलंगाना और सीमान्ध्र के कुछ भाग स्थित हैं। जनजातीय जनसंख्या के शेष 15 प्रतिशत में से 11 प्रतिशत से अधिक पूर्वोत्तर राज्यों में और बाकी के 3 प्रतिशत से थोड़े-से अधिक शेष भारत में रहते हैं। यदि हम राज्य की जनसंख्या में जनजातियों के हिस्से पर दृष्टिपात करें तो पाएँगे कि पूर्वोत्तर राज्यों में इनकी आबादी सबसे घनी है।''[3] मिजोरम देश का ऐसा राज्य है जहाँ की लगभग 95 प्रतिशत आबादी जनजातीय है। वहीं दूसरी ओर मध्य प्रदेश में 1.53 करोड़ जनजातीय लोग रहते हैं और संख्या के लिहाज से यह राज्य देश में शीर्ष पर हैं।

शताब्दियों से आदिवासी समाज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। औपनिवेशिक युग में शोषकों की एक पूरी फौज ने उनका सामाजिक-आर्थिक शोषण किया और तत्कालीन सरकार ने उनके अलगाव की नीति जारी रखी। देश की स्वतंत्रता के बाद हालांकि तमाम सरकारों ने उन्हें मुख्यधारा में लाने के प्रयास किये हैं, लेकिन इसके बावजूद अभी भी वे शोषण, घुटन और अलगाव से पीड़ित हैं और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

बाजारीकरण और भूमंडलीकरण के वर्तमान युग में आदिवासियों के समक्ष अपनी कला, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, रीति-रिवाज और परंपराओं को बचाने का बहुत बड़ा संकट खड़ा

Scanned by CamScanner

RNI No. : CHHBIL00934 ISSN 2454-6291

वर्ष: 1 अंक – 1
प्रवेशांक : जुलाई–सितम्बर 2015

निरंतर उत्कृष्टता की ओर

शोध दृष्टि

कला, विज्ञान एवं मानविकी पर केंद्रित त्रैमासिक शोध पत्रिका

A Registered & Refereed National Research Journal

Circulation Area – Chhattisgarh, Madhya Pradesh, Maharashtra, Karnataka, Rajasthan & Delhi.

Scanned by CamScanner

ISSN 2454-6291

निरंतर उत्कृष्टता की ओर

शोध दृष्टि

RNI No. : CHHBIL00934
वर्ष : 1 अंक – 1
प्रवेशांक : जुलाई–सितम्बर 2015

कला, विज्ञान एव मानविकी पर केंद्रित त्रैमासिक शोध पत्रिका

"कमला" प्रतापपुर रोड, अम्बिकापुर (छ0ग0) 497001
Mobile no. : 9406190365 - shodhdristi18@gmail.com
Mobile no. : 9425582473 - drmrgoyal11@gmail.com

A Registered & Refereed National Research Journal

संरक्षक
डॉ0 कांति कुमार जैन, सागर
डॉ0 दिलीप चन्द्र शर्मा, सागर
डॉ0 सेवा राम त्रिपाठी, रीवा
प्रो0 दिनेश कुशवाह, रीवा

परामर्श
डॉ0 विजय कुमार रक्षित
प्राचार्य, शा. विजय भूषण सिंहदेव कन्या महाविद्यालय, जशपुर
डॉ0 राम कुमार मिश्र
प्राचार्य, शा. स्नातक महाविद्यालय, सिलफिली
डॉ0 एस.एस. अग्रवाल
प्राचार्य, शा. पं. रेवती रमण मिश्र महाविद्यालय, सूरजपुर
डॉ0 आरती तिवारी
प्राचार्य, शा. लाहिड़ी महाविद्यालय, चिरमिरी
डॉ0 तारा शर्मा
विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र, शा. मिनीमाता कन्या महाविद्यालय, कोरबा

प्रधान संपादक
प्रो0 मुकुल रंजन गोयल
एम.ए., पी–एच.डी. (समाजशास्त्र), एल.एल.बी.

संपादक
डॉ0 सुजय मिश्र
एम.ए., पी–एच.डी. (इतिहास)

संपादन सहयोग
डॉ0 सुषमा भगत, अम्बिकापुर
डॉ0 सरोज बाला श्याग विश्नोई, मनेन्द्रगढ़
डॉ0 मोना जैन, रायपुर
डॉ0 शारदा प्रसाद त्रिपाठी, मनेन्द्रगढ
डॉ0 विश्वासी एक्का, अम्बिकापुर
डॉ0 रामकिंकर पाण्डेय, चिरमिरी
डॉ0 अनिता पाण्डेय, बिलासपुर

विषय विशेषज्ञ
डॉ0 रमाकांत पाण्डेय, जयपुर
डॉ0 दिवाकर शर्मा, सागर
प्रो. नितिन जैन, कर्नाटक
डॉ0 मिलेन्द्र सिंह, अम्बिकापुर

प्रबंधन : शिरीष कुमार श्रीवास्तव

आवरण / रेखांकन
श्रीश मिश्र / प्रीतपाल सिंह

विषय–सूची

शुभकामना संदेश
संपादकीय
1. Detection of byzantine attacks in mobile access wireless sensor networks. - Nitin Jain
2. Traditional Political set up in the Kanwar Tribe of Chhattisgarh (with Special refrence to Surguja Division) - Prof. M.R.Goyal
3. जनजातीय समाज में स्त्री शोषण की समस्या और हिन्दी उपन्यास – **डॉ0 उमेश कुमार पाण्डेय**
4. सरगुजा जिले में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मूल्यांकन (लखनपुर विकासखण्ड के विशेष संदर्भ में) – **डॉ0 विनोद गर्ग एवं अनवर हुसैन**
5. पारसी थियेटर का भारत में नया स्वरूप–**डॉ0 चुम्मन प्रसाद**
6. कोरबा जिले में आत्महत्या : एक सामाजिक चुनौती – **डॉ. तारा शर्मा एवं विमला सिंह**
7. गोंड़ एवं उरांव जनजातियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन – **डॉ0 सुषमा भगत**
8. बाल अधिकार – **डॉ0 हाजरा बानो**
9. आदिवासी महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता (सरगुजा जिले के विशेष संदर्भ में) – **डॉ. छाया जैन**
10. बाल अपराध : कारण एवं रोकथाम के उपाय – **डॉ0 सरोज बाला श्याग विश्नोई**
11. भारतीय परिप्रेक्ष्य में विधवा महिलाओं का पुनर्वास : समस्याएँ एवं चुनौतियाँ – **डॉ. विश्वासी एक्का**
12. सुरगुजा रियासत के अद्वितीय प्रशासक महाराजा रामानुजशरण सिंहदेव (1917–1947) के कार्यकाल का संक्षिप्त अवलोकन – **वेणुधर सिंह**
13. 21 वीं सदी में महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार – **प्रदीप कुमार एक्का**
14. अनुसूचित जाति / जनजाति कल्याण कार्यकम : एक सिंहावलोकन – **सी. टोप्पो**
15. छत्तीसगढ़ का विकास और महिलाएँ – **सुशील टोप्पो**
16. छत्तीसगढ़ में सार्वजनिक वितरण प्रणाली एवं गरीबी निवारण – **कु. रजनी सेठिया**
17. छत्तीसगढ़ के कोरिया जिले की पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी (छत्तीसगढ़ पंचायत चुनाव 2009–10 के सन्दर्भ में) – **अजय कुमार सोनी**
18. शिवमूर्ति की कहानी "तिरिया चरित्तर" में ग्रामीण स्त्री की पीड़ा – **प्रदीप कुमार**

Scanned by CamScanner

ISSN 0974-6129
वर्ष 8 अंक 2
जुलाई–सितम्बर 2015
मूल्य–तीस रुपये

संघर्ष, सृजन एवं सांस्कृतिक बोध की वैचारिकी

परमिता

त्रैमासिक शोध-पत्रिका

Scanned by CamScanner

भीतरी पन्नों में

सम्पादकीय

ज्ञान का पंथ / डॉ0 अवधेश दीक्षित / 3

शोध

प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी उत्थान का संकल्प / डॉ0 सुनील कुमार सिंह / 4

ऋग्वेदीय गृह्यसूत्रों में नामकरण संस्कार / इन्दु शेखर राय / 6

गंगा मैया : एक मूल्यांकन / किशोरी लाल / 8

माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक..... / प्रजापति सिंह / डॉ0 गीता राय / 10

माध्यमिक स्तर के शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम का समीक्षात्मक अध्ययन / राजेश कुमार / 13

जनजातीय जीवन में औद्योगीकरण और विकास से..... / डॉ0 उमेश कुमार पाण्डेय / 17

असग़र वजाहत कृत 'सात आसमान' में स्त्री छवि / वाजदा इशरत / 20

प्रारम्भिक विद्यालयों में आयु, लिंग एवं शैक्षिक योग्यता के..... / अजय कुमार सिंह / 22

विद्यापति भक्त या शृंगारिक / गोपेश पाण्डेय / 28

रीतिकाल और कवियों की कविताई / सुकृति मिश्रा / 30

स्वामी विवेकानंद का योग–मर्म / अजय कुमार मिश्र / 32

कवि त्रिलोचन कृत धरती में अभिव्यक्त सामाजिक संदर्भ / नेहा मिश्रा / 34

महर्षि अरविन्द का राष्ट्र के प्रति आध्यात्मिक चिंतन / डॉ0 ध्रुव नारायण पाण्डेय / 38

Natural disaster : Redefine Security; secure people..... /Ram Bilash Yadav /40

Congress Socialist Party & Ideology And Strategy of Gandhi /Shiwani Sharma /43

Manpower Planning In Banking Sector : A Case Study..... /Dr. Bireshwar Pandey /45

Scanned by CamScanner

ISSN 097-6459

शोध-संप्रेषण

SHODH-SAMPRESHAN

International Peer Reviewed Refereed Research Journal

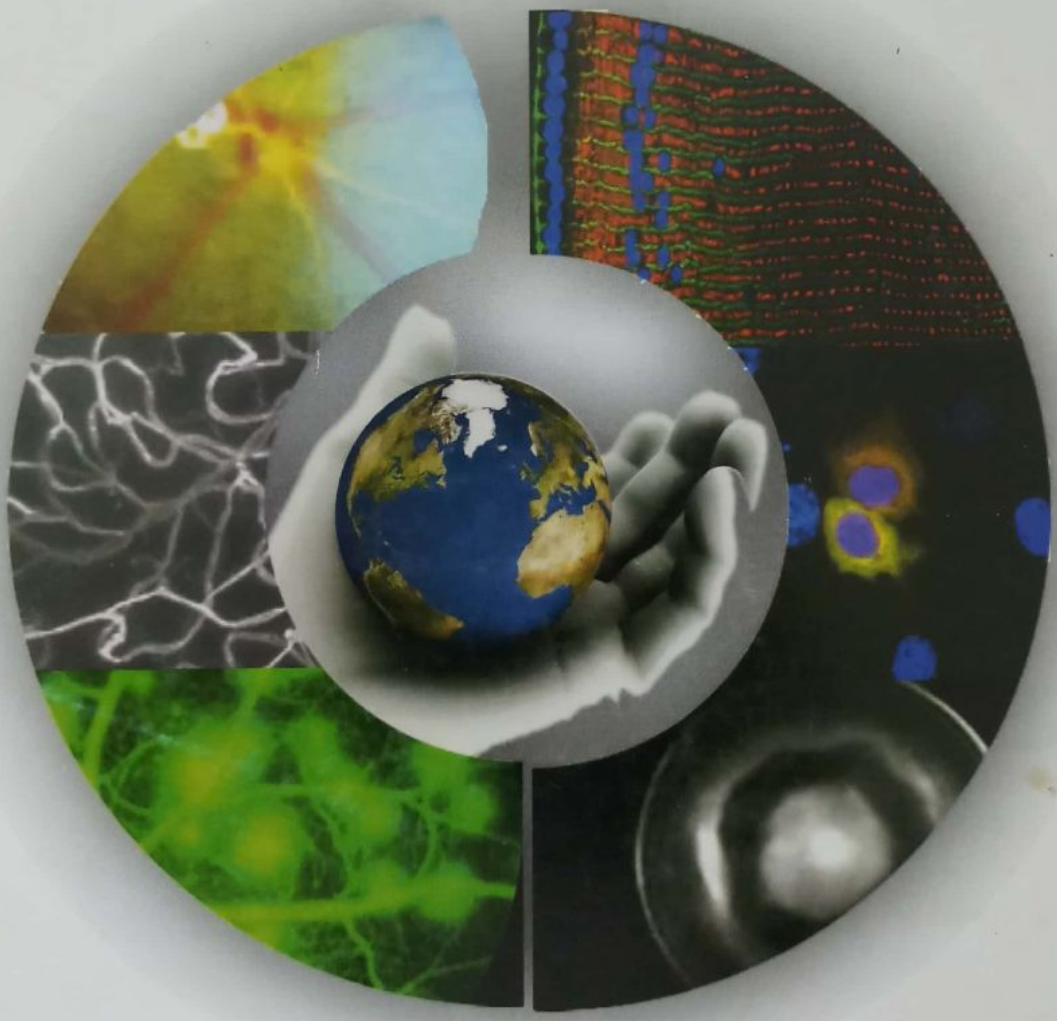

RRDC
Research & Research Development Centre
Research Journal
Conferences
Seminars
International Events

शोध एवं अनुसंधान के लिए समर्पित अंतरराष्ट्रीय रिसर्च जर्नल

International Research Journal for Research & Research Activities

Scanned by CamScanner

शोध-संप्रेषण

त्रैमासिक अंतरराष्ट्रीय रिसर्च जर्नल

अंक : 13 | वर्ष : 4 | संख्या : 3 | जुलाई-सितंबर, 2015

अनुक्रमणिका

1	The Existential and Post Modern Individual with Special Reference to The Sea of Poppies	Mohammad Arif Bhat Dr. Gurpreet Kour Bagga	4
2.	Teaching Strategies	Dr. Aparna Shukla	6
3	Caught Between Cultures in Manju Kapur's A Married Woman	Dr. Smita Sharma	9
4	Role of Judicial Review in implementing International Human Rights Norms	Dwijendranath Thakur	14
5	Quest for Identity in V.S.Naipaul's A House for Mr. Biswas	Jyotika Sahu Dr. Gurpreet Kour Bagga	22
6	The Theme of Marital Disharmony in Raja Rao's The Serpent and the Rope	Lipika Pradhan, Dr. Gurpreet Kour Bagga	24
7	ASTUDY OF MYSTICISM AND REALISM IN KAMALA MARKANDAYA'S "ASILENCE OF DESIRE"	Manjulata Mersa	27
8	A COMPARATIVE STUDY OF JOB SATISFACTION OF COLLEGE TEACHERS	Dr. Sumita Singh	32
9	Title : 19 th C Socio-Religious Reform Movement -Ideology and Philosophy	Dr. Kauser Tasneem	38
10	RES SUB JUDICE AND RES JUDICATA	Mrs. Apurva Verma Vishesh Agrawal	41
11	CHANGES IN KINSHIP RELATIONSHIP IN RURAL CHHATTISGARH	Dr. Jawahar Lal Tiwari	44
12	चाकःग्रामीण नारी के उत्थान की गाथा	संजीव कुमार विश्वकर्मा	47
13	अज्ञेय की कविताओं में वैचारिकी	मनमीत कौर	51
14	भारतीय कृषि उत्पादन व उत्पादकता	डॉ. प्रतिमा बैस देवेन्द्र, कुमार देवांगन	53
15	भारत में पूँजी प्रवाह संदर्भ पंचवर्षीय योजनाएँ	डॉ. राकेश सिंह	58
16	महिला शसक्तिकरण : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, वर्तमान दशा एवं भावी दिशा	डॉ.श्रीमती सरोजबाला श्याग विश्नोई	62
17	पारिवारिक वातावरण का किशोर बालिका सशक्तिकरण पर प्रभाव का अध्ययन	सावित्री जंघेल,सुमित्रा मौर्य	67
18	नवोदित छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर संभाग में पर्यटन उद्योग के विकास की संभावनाएं	श्रीमती श्वेता महाकालकर	
19	आदिवासी समाज में मदिरापान की समस्या और हिन्दी उपन्यास	डॉ. देवाशीष मुखर्जी	71
20	गॉधी जी की अहिंसक समाज–व्यवस्था	डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय	74
21	ग्रामीण क्षेत्र में महिला उद्यमिता विकास की सम्भावनाएँ	डॉ. सीमा द्विवेदी	76
22	हिन्दी के प्रचार प्रसार में साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं का योगदान	डॉ. प्रतिमा बैस, श्रीमती आरती दीक्षित	80
23	आध्यात्मिक प्राण का संयम	सुश्री अमृता केसरवानी	83
24	कालजयी कथाकार प्रेमचंद	श्री सचिन द्विवेदी	87
25	जैन दर्शन के आलोक में 'मूकमाटी' का संदेश-निरूपण	डॉ. सुनीता मिश्रा	89
26	पर्यावरण प्रदूषण एक भयावह समस्या	डॉ.चन्द्रकुमार जैन	92
27	बस्तर में ए.आर.टी. सेन्टर की	डॉ. वंदना दीक्षित	96
		डॉ. प्रियंका शुक्ला	99

Scanned by CamScanner

यात्रा वृतांत

तपोभूमि चित्रकूट

D.J - 9 Jun 96

परबस ही हृदय यादों के झरोखों से उलझ कर प्राकृतिक मनोरमता के विशाल गह्वर में कूद पड़ता है। इस तीर्थस्थल से बिछुड़ने पर इस नश्वर संसार में ये क्षणिक जीवन निः सत्व एवं निरीह लगता है। यहां मन्दाकिनी नदी का कल-कल प्रवाह व उन्मुक्त रूप से विहरण करते हुए बतखों का झुंड कल्पना को भी यथार्थता के रूप में परिलक्षित होने में भी सानी नहीं रखता है यहीं वहां की मानवीय अनुक्रियाएं जीवन को सरस व निर्मल बना देती हैं। संध्या के समय पक्षियों का स्वछंद गगन में विहरण व श्रद्धालुओं का पर्वत परिक्रमण, ऐसा लगता है मानों वास्तविक स्वर्ण यह तपोभूमि ही है। चांदनी रात्रि में चंद्रमा का पर्यास्वनी नदी में नर्तन कम हृदयग्राही नहीं लगता है। पेड़ों की नैसर्गिक सुषमा कम चित्ताकर्षक नहीं। पहाड़ी से अनवरत अविरल प्रवाहित होते झरने मानों अपने अतीत को प्रखर कर अतीत के गौरव को नवीन वेश पहना रहे हों।

सतना से 78 कि.मी. दूर स्थित यह पवित्र स्थल जहां सृष्टि निर्माता ब्रह्माजी, पालनहार विष्णु जी एवं त्रिनेत्रधारी भगवान शिव का बालावतार माना जाता है, जीवन का वास्तविक सुख यहीं सुलभ होता है।

मैं जब प्रथम बार गया था तब आषाढ़ का महीना था। मन्दाकिनी नदी ने विकराल रूप धारण किया था। उसका उफान देखते ही बनता था। पर्वत का दृश्य मनमोहक एवं रमणीय था। पर्वतों के ऊपर उगे हुए वृक्ष व्योम की ओर इस प्रकार टकटकी लगाये थे, मानों ये व्योम को इस वैभवशाली तीर्थ को भ्रमण करने का न्योता दे रहे हों। हनुमान धारा एवं पंचमुखी हनुमान धारा में श्रद्धालुओं का तांता लगा रहता है। मानसून की सनसनाहट से पौधे मस्ती में झूमते दिखाई देते हैं। चारों दिशाओं में प्रफुल्लित कुसुम दृष्टिगोचर हो रहे होते हैं। शरद ऋतु में मां जाह्नवी का सलिल ठीक उसी प्रकार स्वच्छ एवं निर्मल हो जाता, जिस प्रकार सज्जन पुरुषों का हृदय पवित्र एवं पावन रहता है।

सती अनुसुइया आश्रम जो कि 5 कि.मी. दूर चित्रकूट क्षेत्र में अवस्थित है की निराली छटा अत्यंत मनमोहक लगती है। किम्वदन्ती है कि मां त्रिपथगा (चित्रकूट) की नदी जिस गुफा ... का उद्भव इसी स्थल से हुआ था। घने जंगलों से सुशोभित यह आश्रम मां अनुसुइया के त्याग एवं तपोबल की गाथा गाता है। पतिव्रता नारियों के लिए उनका धर्मकल्प शिष्ट सभ्यता के लिए एक अद्भुत मिशाल है। आदर्शों के प्रति निष्ठा ही मां का एकमात्र ध्येय था। और आश्रम से कुछ ही दूर है यह स्फटिक शिला जहां मां जाह्नवी में थोड़ा सा ही चना विसर्जित करने से हजारों मछलियों का झुण्ड इसे प्राप्त करने की लिप्सा में होड़ सा लगा देता है व अनायास ही दाता का हृदय गदगद हो उठता है।

द्वितीय बार जब मैं गया था तब कार्तिक की मनुहार थी। शीत ऋतु का प्रारंभ मात्र ही था। शीत ऋतु में कुहरे से ढका यह नगर ऐसा प्रतीत होता है मानों कहीं समाहित हो गया हो। कार्तिक में दीपावली के सुअवसर पर जन सैलाब देखते ही बनता है। दीपमलिकाओं का संध्याकाल में मां त्रिपथगा में विसर्जन ऐसा प्रतीत होता है मानों मां त्रिपथगा ने ज्ञान का विसर्जन कर दिया हो। "संसार के समस्त मानव चाहे वे पापी हों या कोढ़ी सज्जन हों या दुर्जन सब अपने कृत्य कर्मों को भुलाकर परबस ही इसकी ओर खिंचे होने का मार्ग अपनाते हैं।" दीपावली के शुभ अवसर पर चित्रकूट की पवित्र भूमि तिल-तिल पर श्रद्धालुओं से गंसी रहती है।

राममुहल्ला जहां पर विराजित है चित्रकूट के सबसे प्रमुख देवता जो कि आदिकाल से आज तक लोगों को उनके कर्मों के हिसाब से आशीर्वाद वितरित करते हैं। परम पिता कामता स्वामी जी के दर्शन के लिए लाखों लोग आते हैं व मोक्ष प्राप्त करते है।

अन्तिम बार मैं ग्रीष्म ऋतु में वैसाख के महीनें में गया था, हवा के प्रखर प्रवाह में मां त्रिपथंगा का जल हिलोरे ले रहा था। उसे देखकर तो ऐसा लगता था मानों मां ने संसार के सम्पूर्ण वैभव को स्वयं अंगीकृत कर लिया हो। गुप्त गोदावरी की आंख मिचौनी कम हृदयग्राही नहीं लगती। उसे अन्दर बनी हुई गुफाएं उत्कृष्ट नमूनों का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहां की गुफाओं में चमत्कार सा परिलक्षित होता है यहां गुफा के अन्दर ग्रीष्म में शीतलता एवं शीत में ग्रीष्मता का अनुभव होता है।

चित्रकूट भारत की पवित्र भूमि का एक अभिन्न अंग है। यहां जीवन मूल्य की यथार्थता परबस ही परिलक्षित होती है। चित्रकूट से लौटने पर मेरा मन पागल सा हो गया ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ममतामयी मां एक क्षण अपने पुत्र को देखकर पागल हो उठती है। जिस प्रकार सूर्य व उसकी ऊष्णता को पृथक नहीं किया जा सकता ठीक उसी प्रकार मेरा मन चित्रकूट से अभिन्न नहीं है। आज भी चित्रकूट की यादें तद्वित भावनाओं को ताजा कर देती हैं।

Scanned by CamScanner

↳	श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तिनस्तत्कृतीनाञ्च परिचयः **पियाली पाल**	57-58
↳	जगत् सृष्टि–सम्बन्धी वैदिक धारणायें **सिद्धार्थ मण्डल**	59-62
↳	সামাজিক হিতসাধনে শ্রীমদ্ভগবদ্গীতার প্রাসঙ্গিকতা তন্ময় দে	63-66
↳	छायावादी कविता में राष्ट्रीय जागरण का स्वर **हेमन्त प्रसाद**	67-70
↳	भारत के आर्थिक विकास में खाद्यान्नों की भूमिका **डॉ0 अरबिन्द कुमार**	71-74
↳	भारत का स्वतंत्रता संघर्ष और प्रेमचंद के संघर्षशील पात्र **श्वेता सिंह**	75-78
↳	श्री हर्षों की परम्परा तथा नैषध प्रणेता महाकवि श्री हर्ष **बिन्दू प्रजापति**	79-80
↳	निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 : एक सिंहावलोकन **अखिलेश कुमार राय**	81-84
↳	लखनऊ चिकनकारी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा तकनीक **डॉ0 उमेश चन्द्र सोनकर**	85-88
↳	कला में पट–चित्रों का महत्व **रामअवध**	89-92
↳	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में धर्मशास्त्रीय विधानों की प्रासङ्गिकता **डॉ. शंकर कुमार मिश्र**	93-96
↳	हिन्दू धर्म और नारी की महानता **मधु**	97-100
↳	समकालीन भारतीय समाज में कामकाजी महिलाओं के समक्ष चुनौतियाँ **सत्येन्द्र सिंह**	101-104
↳	हिन्दी के समकालीन ऐतिहासिक उपन्यास **विजय प्रताप निषाद**	105-108
↳	स्मृतियों में भारतीय न्याय पद्धति **अर्चना गुप्ता**	109-114
↳	आधे–अधूरे : आधुनिक मनुष्य की विडम्बना **चारु गोयल**	115-116
↳	हवाएँ इंकिलाब आने वाला है हिंदुस्तां वालों **दीपिका सिंह**	117-120

Interdisciplinary Journal of Contemporary Research, Vol. 2, No. 1, February - March 2015 *ISSN: 2393-8358*

स्मृतियों में भारतीय न्याय पद्धति

अर्चना गुप्ता
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

स्मृतियाँ सनातन संस्कृति का सनातन उपहार हैं। ये पृथ्वी पर मानव जन्म के पश्चात उसके जीवन की प्रकृति के साथ समरसता स्थापित करने के लिए मानव समाज की अति मूल्यवान निधि हैं। पाश्चात्य इतिहासकारों ने राजनीतिक दर्शन व चिन्तन का स्रोत यूरोप में ढूँढने का प्रयास किया है, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि प्राचीन भारत में राजनीतिक व विधिक चिन्तन की एक स्वस्थ व दीर्घ परम्परा दिखाई देती है। स्मृतियाँ प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था व न्याय व्यवस्था का मुख्य स्रोत रही हैं। भारतीय स्मृतियों में निहित शाश्वत मूल्य आज भी प्रासंगिक है। प्रस्तुत प्रपत्र में स्मृतियों में वर्णित भारतीय न्याय पद्धति का वर्णन किया गया है।

कुंजी शब्द– दण्डपारूष्य, स्तेय, अप्रच्छन्न, वाक्पारूष्य।

भारतवर्ष एक धर्म प्रधान देश है। भारतीय धर्म का मूलाधर वेद हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में स्मृतियों का स्थान वेदों के बाद आता है। वेद विधि के मूल स्रोत भी माने गए है तथा स्मृतियों के विधि–विधान उन्हीं पर आधारित हैं। स्मृति के बारे में कहा गया है "स्मर्यत इति स्मृति" अर्थात् ऐसे ग्रन्थ जो ऋषियों द्वारा स्मृति के आधार पर लिखे गए हैं, स्मृतियाँ कहलाएँ है।[1] स्मृतियों का आधार मूलरूप से वह रीति (Custom) लोकाचार (Convention) तथा सम्प्रदाय (Tradition) बना जिसे समाज ने दीर्घकाल से आत्मसात् कर रखा था। इन्हें 'समयाधारिक धर्म' कहा जा सकता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के टीकाकार हरदत्त ने इसे 'पौरुषेयीव्यवस्था' माना है।[2]

विधि के दूसरे स्रोत स्मृति शब्द को कुछ विद्वानों ने स्मरण से जोड़ा है। गौतम धर्मसूत्र में प्रयुक्त 'स्मृतिशील'[3] तथा मनु द्वारा प्रयुक्त इसी शब्दयुग्म[4] में अल्टेकर प्रभृति विद्वानों ने स्मृति का अर्थ स्मरण (Memory) माना है। गौतम, वशिष्ठ और बोधायन ने स्मृति को वेद के जानने वालों का स्मरण बताया है। यह मान्यता है कि स्मृतियाँ वेदों के लुप्त पाठों पर आधारित हैं अर्थात् स्मृतियाँ ऋषियों द्वारा स्मरण रखे गये वेदों के पाठों के आशय को अन्तर्विष्ठ करती हैं। 'स्मृति' शब्द का दूसरा अभिप्राय 'धर्मशास्त्र' माना गया है।[5] अल्टेकर की यह धारणा है कि रीति, लोकाचार तथा सम्प्रदाय व्यवहार पहले शिष्टों की स्मृति में थे जिन्हें बाद में लिपिबद्ध किया गया और उपचार से इन ग्रंथों को ही स्मृति–ग्रंथ की संज्ञा दी गयी।[6] पी.एन. सेन का भी मानना यही है कि स्मृतिकार धर्मों के साक्षात् द्रष्टा नहीं हैं बल्कि ऋषियों की स्मृति के ही आधार पर इनकी रचनाएँ हैं। मनु ने भी स्मृति का अर्थ **'वेदज्ञों का स्मरण'** माना और उसका उपयोग धर्मशास्त्र के अर्थ में किया है।[7]

स्मृतियों की संख्या अत्यंत अधिक है। इसका कारण यह है कि समाज की गतिशीलता, नयी संस्कृतियों का प्रवेश तथा परिस्थितियों की बाध्यता के कारण प्रचलित प्रथाओं का विरोध सम्भव नहीं था और वे श्रुतियों की व्याख्याओं की सीमा में नहीं आते थे। ऐसे में समाज के सचेतक विद्वान विभिन्न–व्याख्याओं तथा तर्कों द्वारा, बदलते परिवेश के अनुसार, अपनी रचनाओं में तत्कालीन समस्याओं के समाधान तथा प्रचलित प्रथाओं के माप–दण्ड के अनुसार स्मृतियों की रचनाएँ करने में प्रयत्नशील हुए। फलतः इनकी संख्या बहुत अधिक हो गयी क्योंकि उन दिनों न तो कापीराइट कानून थे, न उन्हें यश की लिप्सा थी और न तो उनको आर्थिक लाभ ही था।[8] उनका प्रयत्न समाज में एकता तथा समरसता की स्थापना करने तथा श्रुतिगत–नियमों की अपरिहार्यता तथा मर्यादा की रक्षा करने के लिए ही था।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में मनुस्मृति का स्थान प्रमुख है। इसमें प्रतिपादित विचार लम्बे ऐतिहासिक काल व परम्परा का प्रतिनिधित्व करते है। मनुस्मृति मानव–धर्मसूत्र का स्मृति ग्रंथ के रूप में परिवर्तित एवं सम्भवतः परिवर्धित रूप है। राजा के कर्तव्यों की व्याख्या करते हुए प्राचीन भारतीय न्याय–प्रशासन पर यह महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है। मनुस्मृति में उपलब्ध सामग्री का सम्बंध मानव समाज से है। वर्णों की उत्पत्ति, उनके अधिकार, व कर्तव्य, आश्रम–व्यवस्था, विवाह संस्कार, राज्य कर्मचारी एवं पति–पत्नी के अधिकार व कर्तव्य, दीवानी, फौजदारी से सम्बंधित कानून, धार्मिक एवं सामाजिक अपराध तथा प्रायश्चित, उत्तराधिकार के नियम आदि का उल्लेख कर मनुस्मृति प्राचीन भारतीय न्याय प्रशासन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालती है।

स्मृतियों में विधि के लिए 'व्यवहार' का प्रयोग किया गया है। मनु के अनुसार इसका अर्थ है– झगड़ा या वाद।[9] सर्वप्रथम मनुस्मृति में 18 विषयों अथवा व्यवहार पदों के नाम गिनाएँ गए है। वे इस प्रकार हैं– ऋणादान, निक्षेप, अस्वामिविक्रय, सम्भूयसमुत्थान, दत्तस्यानपाकर्म, वेतनादान, संविदव्यतिक्रम, क्रयविक्रयानुशय स्वामिपालविवाद, सीमाविवाद, वाक्यारूष्य, दण्डपारुष्य, स्तेय, साहस, स्त्रीपुंधर्म, विभाग,

ISSN : 2249-037x

भारतीय संस्कृति के संरक्षक व मानवता के उपासक : विवेकानन्द

अर्चना गुप्ता*

विवेकानन्द अध्यात्म के क्षेत्र में एक अविस्मरणीय नाम है जिनके सम्बंध में स्वयं उनके गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि वे सागर के बीच महासागर हैं। स्वामी विवकानन्द एक महान देशभक्त, चिंतक, आध्यात्मिक नेता, मानवता प्रेमी तथा जीवात्माओं को जागृत करने वाले महान संत थे। रामकृष्ण परमहंस की शिक्षा के प्रचार तथा विकास का मुख्य श्रेय स्वामी विवेकानन्द को है। विवेकानन्द भारतीय गगन मंडल में एक ऐसे सितारे की भांति हैं जो सदैव जगमगाते रहेंगे।

स्वामी विवेकानन्द ने भारत भूमि पर विकसित सर्वश्रेष्ठ दर्शन वेदान्त का अनूठे ढंग से देश व विदेश में प्रतिपादित किया। इनका दर्शन व राष्ट्रवाद नव– वेदांत के नाम से जाना जाता है। उन्होंने 19वीं सदी के अंतिम और 20वीं सदी के शुरूआती वर्षों के दौरान बंगाल तथा भारत के अन्य हिस्सों में सांस्कृतिक पुनरुत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके व्याख्यान तथा लेख महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस, सी. राजगोपालाचारी जैसे आजादी से पूर्व के बहुत से राजनीतिक नेताओं के लिए प्रेरणास्रोत बने। इन सभी ने स्वामीजी के विचारों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है।

स्वामी जी का कहना था कि गरीबों की उपेक्षा और उनका शोषण भारत के पतन और पिछड़ेपन का मुख्य कारण है। वह उन पहले आध्यात्मिक नेताओं में से थे, जिन्होंने जनसामान्य के समर्थन में आवाज उठाई। उन्होंने देश में गरीबों की दुर्दशा के बारे में राष्ट्रीय जागरूकता पैदा करने की कोशिश की। उनके इस उद्घोष ने सैकड़ों युवाओं के मन में समाज सेवा को जीवन पद्धति के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित किया था कि, **'जब तक लाखों लोग भूख और अज्ञानता में रह रहे हैं, तब तक मैं हर उस व्यक्ति को देशद्रोही मानता हूं जिसने उनके पैसे से शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद उन पर थोड़ा भी ध्यान नहीं दिया।'** देश की दासता और निर्धनता का चित्रण करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था: **"अब भारतराजनैतिक शक्ति नहीं, आज वह दासता में बंधी हुई एक जाति है। अपने ही प्रशासन में भारतीयों की कोई आवाज नहीं है, उनका कोई स्थान नहीं है– वे केवल 30 करोड़ गुलाम हैं और कुछ नहीं।"**

स्वामी जी देश की अवनति के प्रति केवल अश्रुपात करने वाले व्यक्ति नहीं थे, उनके अन्तःकरण में देश का उत्थान करने की प्रबल इच्छा आन्दोलित हो रही थी। उन्होंने भारतवासियों में गर्वीन प्राण का संचार करने वाला उद्बोधन करते हुए कहा था– **"ये भारत क्या दूसरों की हाँ में हाँ मिलाकर दूसरों की नकल कर परमुखापेक्षी होकर इन दासों की सी दुर्बलता, इस घृणित, जघन्य, निष्ठुरता से तुम वीरभोग्या स्वाधीनता प्राप्त करोगे? ऐ भारत तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती हैं; मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं; मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छायामात्र है, मत भूलना कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त और तुम्हारे भाई हैं। ऐ वीर! साहस का आश्रय लो। गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं। भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है। भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है, और रात–दिन कहते रहो कि –हे गौरीनाथ! हे जगदम्बे! मुझे मनुश्यत्व दो; माँ, मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बना दो।"**

उस समय में जबकि भारत उदासीनता आलस्य और निराशा के घोर वातावरण में डूबा हुआ था, स्वामी जी के विचारों ने भारतवासियों में निर्भीकता और कर्मठता का संचार किया। स्वामी जी ने भारतवासियों को जहाँ स्वाधीनता की प्राप्ति की आशा बंधाई वहीं उन्हें त्यागपूर्ण वृत्ति धारण करने की शिक्षा दी, सामाजिक व राष्ट्रीय एकता और सार्वजनिक कल्याण की प्राप्ति पर बल दिया और विदेशी शासकों के आतंक से उत्पन्न होने वाली कापुरुषता का परित्याग करने का आह्वान किया। भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण के सन्दर्भ में ये समस्त विचार महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

विवेकानन्द भारत के उस युग में आते हैं जब भारत आत्महीनता से ग्रस्त था। विवेकानन्द के सामने सबसे अहम प्रश्न यह था कि भारतवासियों में कैसे उर्जा भक्ति का संचार किया जाए। वस्तुतः, विवेकानन्द उस अन्धी शताब्दी में पैदा होते हैं, जिसमें व्यक्ति अपने अस्तित्व को भूल बैठा था। अन्धी शताब्दी को जो व्यक्ति ज्योतित करता है वह ज्योति पुरुष कहा जाता है।

* शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्राचीन भारतीय ग्राम अदालतों की प्रासंगि

अर्चना

ग्राम अदालतें प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था का आधार रही हैं। प्राची
में बड़े–बड़े मुकदमों का निपटारा गाँव की पंचायतों द्वारा ही कर दिया जाता थ
स्तर पर न्यायिक इकाइयाँ पंचायतों एवं महापंचायतों के रूप में सक्रिय थीं।
रहने वाले व्यक्तियों को न्याय पाने के लिए नगरों की तरफ भागना नहीं पड़ता
न ही आज की तरह इसके लिए भारी खर्च उठाने पड़ते थे। **'न्याय आपके द्**
परिकल्पना प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में निहित थी। वर्तमान समय में
न्याय व्यवस्था की स्थिति डांवाडोल है। न्यायालयों पर लंबित मुकदमों का बोझ
जा रहा है और परिणाम स्वरूप न्याय मिलने में अनावश्यक रूप से विलंब की
विकराल होती जा रही है। ऐसी स्थिति में ग्राम अदालतों की प्रासंगिकता स्पष्ट
है। वर्तमान न्याय प्रणाली में त्वरितता लाने एवं न्याय को लोगों के द्वार तक
के लिए ग्राम अदालतों की स्थापना अत्यंत आवश्यक है।

ग्राम अदालतों की पृष्ठभूमि–

अति प्राचीन काल से आधुनिक युग तक ग्राम भारतीय सभ्यता का आध
शासन–व्यवस्था की धुरी रहे हैं। 'ग्राम' शब्द ऋग्वेद में भी आया है। वैदिक
ग्रामों की समृद्धि के लिए बहुत बार प्रार्थना की गयी है। वैदिक काल
छोटे–छोटे होते थे, इस कारण ग्रामों का महत्व और भी बढ़ गया था। वेदों में
अधिकारी को 'ग्रामणी' कहा गया है।[1] वैदिक काल में ग्रामणी का महत्वपूर्ण स्थ
वह न्यायिक व्यवस्था में स्थानीय इकाई का प्रधान था। उसका पद चुना हुआ
अपराधविधि में उसे अधिक अधिकार थे। ग्रामणी ब्राह्मण नहीं होता था। कौ
'ग्रामवृद्धों' के हाथ में न्यायिक अधिकार दिया था।[2]

ग्राम न्यायालयों का अस्तित्व वैदिक काल में भी था और वे प्रथागत कानूनों को प्रशासित करते थे। धर्म–शास्त्रों व नीति–शास्त्रों में स्थानीय न्यायालयों का उल्लेख है–

---

* शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

1 परमात्मा शरण, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृ0 416.

2 हरिहरनाथ त्रिपाठी, प्राचीन भारत में राज्य व न्यायपालिका, पृ0 149.

'अनुकृति' (An International Refereed Research Journal), वर्ष–5, अंक–6, जुलाई–सितम्बर 2018 ISSN : 2250-1193

मनुस्मृति में न्याय एवं दण्ड

अर्चना गुप्ता*

सारांश

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में मनुस्मृति का स्थान प्रमुख है। इसमें प्रतिपादित विचार लम्बे ऐतिहासिक काल व परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। मनुस्मृति मानव–धर्मसूत्र का स्मृति ग्रंथ के रूप में परिवर्तित एवं सम्भवतः परिवर्धित रूप है। राजा के कर्तव्यों की व्याख्या करते हुए प्राचीन भारतीय न्याय–प्रशासन पर यह महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है। मनुस्मृति में उपलब्ध सामग्री का सम्बंध मानव समाज से है। वर्णों की उत्पत्ति, उनके अधिकार व कर्तव्य, आश्रम–व्यवस्था, विवाह संस्कार, राज्य कर्मचारी एवं पति–पत्नी के अधिकार व कर्तव्य, दीवानी, फौजदारी से सम्बंधित कानून, धार्मिक एवं सामाजिक अपराध तथा प्रायश्चित, उत्तराधिकार के नियम आदि का उल्लेख कर मनुस्मृति प्राचीन भारतीय न्याय प्रशासन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालती है।

कुंजी शब्द– न्यायिक–सक्रियता, पूर्वाग्रहता, प्राड्विवाक।

स्मृतियों में विधि के लिए 'व्यवहार' का प्रयोग किया गया है। मनु के अनुसार इसका अर्थ है– झगड़ा या वाद।[1] सर्वप्रथम मनुस्मृति में 18 विषयों अथवा व्यवहार पदों के नाम गिनाएँ गए है। वे इस प्रकार हैं– ऋणादान, निक्षेप, अस्वामिविक्रय, सम्भूयसमुत्थान, दत्तस्यानपाकर्म, वेतनादान, संविद्व्यतिक्रम, क्रयविक्रयानुशय स्वामिपालविवाद, सीमाविवाद, वाक्यारूष्य, दण्डपारुष्य, स्तेय, साहस, स्त्रीपुत्रधर्म, विभाग, धूतसमाह्वय।[2] मनुस्मृति में व्यवहार सम्बंधी विस्तृत विवरण अध्याय 8 व अध्याय 9 में दिया गया है। यद्यपि याज्ञवल्क्य व नारद स्मृतियों की तरह इसमें व्यवहार प्रक्रिया का अधिक विस्तार नहीं दिखाई देता है लेकिन न्याय व्यवस्था पर मनु का विवरण बहुत रोचक और व्यवस्थित तरीके से दिया गया है।

मनुस्मृति में राजा के न्यायिक अधिकार के सम्बंध में पर्याप्त विचार सामग्री उपलब्ध है। राज्य में न्याय की समुचित व्यवस्था उसके प्रगति का द्योतक है प्रजा के स्वत्व की रक्षा करने वाले विधान संस्कृति के मापदण्ड होते हैं। मनुस्मृति के महत्व का एक कारण उसकी न्याय तथा विधि सम्बन्धी प्रगतिशील विचारधारा है।[3] मनु राजतंत्र का समर्थन करते है। चूँकि राजतंत्र शक्ति विभाजन सिद्धांत के प्रतिकूल है, अतः राजा के अन्य अधिकारों के साथ उसके पास न्यायिक अधिकार भी रहते है। राजा इस शक्ति के कारण न्याय का स्रोत है।[4] राजा के पास विधि निर्माण का अधिकार नहीं है। विधि की व्याख्य का कार्य धर्मशास्त्रों अथवा विद्वान मनीषियों के अधिकार क्षेत्र में है। फलतः राजा निर्मित विधि के माध्यम से ही न्याय करता है। परन्तु राजा, जो अदण्ड्य है, वह दण्डित न हो जाए, जो दण्ड्य हो वह मुक्त न हो जाए, इसका ध्यान रखता है।[5] इस प्रकार की यदि घटना हो जाए जो राजा के साथ मंत्री, पुरोहित अर्थात न्यायिक प्रशासन उत्तरदायी होता है और दण्ड स्वरूप प्रायश्चित करता है।[6] इसके साथ यदि राजा न्यायालय में समय पर उपस्थित न हो अथवा कार्यवाही के संचालन में किसी प्रकार की अवमानना करता है तो वह अपराधी समझा जाता है। उसकी सामान्य अवमानना से न्याय के अन्य कर्मचारियों में प्रमाद का विस्तार सम्भव है।[7] राज्य के विरूद्ध क्रांतियों न्याय व्यवस्था में सम्पूर्ण कार्यवाही के संचालन का अधिकार राजा को प्राप्त है। मनुस्मृति में 'सक्रिय–न्यायपालिका' एवं 'न्यायिक–सक्रियता' का रूप पाया जाता है।[8]

मनुस्मृति में न्यायिक प्रशासन सम्बन्धी उल्लेख से स्पष्ट है कि विभिन्न प्रकार के न्यायालयों को संगठित करने का राजा कोई विशेष प्रयास नहीं करता। इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्यस्मृति कुछ अधिक प्रगतिशील है। मनु ने प्रशासकीय अधिकारियों को न्याय कार्य का अधिकार सौंपा है। वे राजा द्वारा नियुक्त कर्मचारी है। प्रशासनिक अधिकारियों में सबसे नीचे की ईकाई का अधिकारी ग्रामिक है। ग्रामिक के अधिकारों में न्यायिक अधिकार भी सम्मिलित है। इसकी क्षेत्र तथा सीमा एक ग्राम तक संकुचित है। यदि ग्राम अधिकारी व्यवहारों को निश्चित करने में असमर्थता का अनुभव करता है, तब दश ग्राम के अधिपति के पास भेजा जाता है। इस प्रक्रिया में सहस्राधिपति तक निर्णय करने के लिए जाया जा सकता है। परन्तु ग्रमिक, विंशी, विंशती, शती, सहस्रपति आदि सभी राजा द्वारा नियुक्त अधिकारी हैं।[9] मनुस्मृति में यह स्पष्ट नहीं है कि ग्राम पदाधिकारी किस प्रकार के विषयों को अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत रखते हैं। मनुस्मृति केवल ग्राम दोषों का उल्लेख करती है। यद्यपि ग्राम दोषों में सभी प्रकार के दोष आ जाते हैं। ऋण दान, सीमा विवाद, स्वामिपाल–विवाद आदि से लेकर सभी इसके अन्तर्गत हैं। निष्कर्ष यह है कि इन प्रशासकीय पदाधिकारियों को ग्राम की शांति एवं व्यवस्था बनाये रखने के हेतु सभी प्रकार के विषयों को ग्रहण का अधिकार है, जिनसे

* शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्राचीन भारत में न्यायालयों का संगठन

*अर्चना गुप्ता**

न्यायालय न्यायिक प्रशासन के अंग हैं। उनके संगठन एवं विकास के माध्यम से न्यायपालिका का स्वरूप सामने आता है। प्राचीन भारत में न्यायालयों का विकास समाज की न्यायिक एवं सामाजिक संस्थाओं से होता है। ऐसी संस्थाएं न्याय के साथ नीति एवं विधान संचालन करती थीं। वैदिक काल की न्यायिक संस्थाओं में परिषद, सभा आदि केवल न्यायालय का कार्य नहीं करती थीं अपितु वे सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं के भी रूप में थीं। राजशक्ति के विकास के साथ राजसभा के उदय होने पर उसने इन संस्थाओं का प्रभाव था। फलतः राजसभा राजा की इच्छा पर न्याय करने वाली न हो सकी। प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था में केन्द्रीय शासन के विकसित होने पर भी स्थानीय न्यायिक शक्तियों का महत्व कम नहीं हुआ। केन्द्र के साथ प्रशासन की दृष्टि से उनका सम्बंध जोड़ा गया लेकिन उनकी स्वतंत्रता नहीं समाप्त की गयी। वर्गीय न्यायालयों की स्वतंत्रता की सुरक्षा की गयी। उत्तरवर्ती काल के न्यायालयों के जो नियम स्वीकार किये गये उनमें विधि–सम्प्रभुता के कार्यान्वयन का ही प्रयास किया गया। राजा एवं न्यायाधीश भी उन नियमों की सीमा में ही बँधे रहे। इन तथ्यों के स्पष्टीकरण के लिए वैदिक काल से स्मृतिकाल तक की न्यायिक संस्थाओं का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।[1]

ग्रामणी

वैदिक काल में ग्रामणी का महत्वपूर्ण स्थान था। प्राचीन ग्राम–संगठन, न्यूनाधिक रूप में एक नैसर्गिक विकास का प्रतिफल था न कि किसी केन्द्रिय शासन की उपज। जिस क्षेत्र में लोग सामूहिक रूप से निवास करते थे, उसे जनपद कहा जाता था। कुलों के समूह को 'गोत्र' कहते थे तथा गोत्रों के समूह का नाम 'गोष्ठी' था। कई गोष्ठियों के समूह से एक ग्राम बनता था जिसका प्रधान 'ग्रामणी' कहा जाता था। ग्रामणी का उल्लेख मनु ने भी किया है, जिसे सामग्री के रूप में अनुमोदित राशि मिलती थी। मनु तथा कौटिल्य ने 'ग्रामणी' की जगह 'ग्रामिक' शब्द का प्रयोग किया किया है। ग्रामणी न्यायिक प्रशासन में स्थानीय इकाई का प्रधान था। उसका पद चुना हुआ था और अपराध विधि में उसे अधिक अधिकार प्राप्त थे। वेदों के 'ग्रामवादिन' को मैकडॉनल और कीथ ग्राम सभा का अध्यक्ष मानते हैं।[2]

परिषद

वैदिक उदाहरणों से परिषद की एतिहासिक परम्परा पर प्रकाश पड़ता है। धर्मसूत्रों और उनके बाद परिषद का वैधानिक रूप स्पष्ट होता है। ऋग्वेद से अर्थशास्त्र तक परिषद की परम्परा के अध्ययन से उसमें न्यायपालिका सम्बंधी तथ्यों का स्पष्टीकरण होता है।[3] परिषद में राजा की उपस्थिति का उल्लेख ब्राह्मण ग्रंथो में मिलता है। उपनिषदों एवं गृहसूत्रों के समय सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव परिषद पर भी पड़ा। वैदिक इण्डेक्स के लेखकों का मानना है कि 'परिषद' ऐसी समिति थी जो केवल दार्शनिक विषयों पर अपना मत तथा निर्णय देती थी किन्तु परवर्ती साहित्य से यह अभिव्यक्त होता है कि धार्मिक विषयों के निर्णय के अतिरिक्त यह न्यायाधीशों के साथ सभ्यों के रूप में मत व्यक्त करती थी तथा प्रधानमंत्री या सामान्य मंत्री के सहयोगी के रूप में भी अपना मत व्यक्त करती थी।[4]

उपनिषद् काल के पश्चात् सूत्रकाल तक परिषद का स्वरूप दार्शनिक से हटकर विधि–व्याख्याता के रूप में विकसित हो गया। उसके गठन तथा सदस्यता आदि के विषय में नियम निर्धारित किये गये। गौतम के अनुसार उसमें दस सदस्यों का होना अनिवार्य है, जिसमें

*शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

- महादेवी वर्मा की कविताओं की भाषिक संरचना 212-216
  धीरेन्द्र नाथ चाबे, शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- भारतीय नाट्य मण्डप की प्रासंगिकता 217-219
  पूजा मिश्रा, सहायक आचार्य, (तदर्थ) संस्कृत, माता सुंदरी महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- प्रत्यक्ष-विचार के परिप्रेक्ष्य में बौद्ध दर्शन एवं अद्वैत वेदान्त का तुलनात्मक-अध्ययन 220-221
  अमरनाथ सिंह, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- श्री अरविन्द-साहित्य में राष्ट्रवादी चिन्तन 222-225
  अश्वनी कुमार, शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विज्ञान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- नागार्जुन : एक दृष्टि 226-228
  सत्यवीर, शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005
- महाकाव्यों में वर्णित न्याय एवं दण्ड व्यवस्था 229-233
  अर्चना गुप्ता, शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- प्राचीन भारत में शिल्प व उद्योग 234-239
  डॉ. अवनीश कुमार सिंह, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- शान्तिपर्व एवं अनुशासनपर्व में वर्णित कराधान : एक अध्ययन 240-246
  डॉ. मीनाक्षी सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, प्रा.भा.इ. एवं सं. तथा पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
  शानु आनन्द, शोध छात्र प्रा.भा.इ. एवं सं. तथा पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
  पंकज कुमार, शोध छात्र प्रा.भा.इ. एवं सं. तथा पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
  श्रवण कुमार यादव, शोध छात्र प्रा.भा.इ. एवं सं. तथा पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- भवभूति साहित्य में चित्रकला 247-250
  डॉ. राहुल, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पी.जी. कॉलेज गाजीपुर, गाजीपुर, उ.प्र.
- संगीत शिक्षण परम्परा का सैद्धान्तिक अध्ययन एवं क्रमिक विकास 251-253
  मनीष कुमार वर्मा, शोध छात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- औपनिवेशिक भारत में रेलवे का विकास 254-257
  रोहित कुमार, शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- शहरीकरण का भारतीय गाँवों पर बढ़ता प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन 258-262
  राजा बाबू गुप्ता, शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- समकालीन भारत में बदलते जातीय समीकरण एवं अम्बेडकर के विचारों की प्रासंगिकता 263-266
  वरूण कुमार उपाध्याय, शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, वर्ष-... , अंक प्रथम, जनवरी-जून, ... 2229-452X

प्राचीन भारतीय विधि की व्यावहारिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

अर्चना गुप्ता

प्राचीन भारतीय न्यायविदों ने न्याय को धर्म का ही एक भाग माना है, जिसका प्रारम्भिक स्वरूप धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में पाया जाता है, जो दूसरे अर्थों में मानव–आचार संहिता है। धर्मशास्त्रकारों के अनुसार प्राचीन भारतीय न्याय के मूल स्रोत वेद (श्रुति), स्मृति, धर्मशास्त्रग्रंथ, सदाचार एवं परिषद् हैं। पुराण, न्याय मीमांसा पर की गई टीकाएँ भी प्राचीन भारतीय न्याय–प्रशासन पर प्रकाश डालती हैं और विधि की व्यवहारिकता को सिद्ध करती है।

वेदों में विधि के स्रोत निहित हैं। प्राचीन भारतीय न्याय प्रशासन ऋत से प्रारम्भ होता है। वैदिक काल में विधि ऋत के रूप में ही थी।[1] उसकी शक्ति सर्वोच्च थी तथा उसी के आधार पर समाज को संगठित करने का प्रयास किया गया। मानव कल्याण के सभी पदार्थ ऋत में निहित रहते हैं और ऋत द्वारा ही उनका मानव कल्याण के हित में विनियोग होता है।[2]

स्मृतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारतीय विधि काल्पनिक नहीं थी बल्कि व्यवहार में प्रचलित थी। स्मृतियों में विधि के लिए 'व्यवहार' शब्द का प्रयोग किया गया है। मनु के अनुसार इसका अर्थ है– झगड़ा या वाद।[3] सर्वप्रथम मनुस्मृति में 18 विषयों अथवा व्यवहार पदों के नाम गिनाएँ गए हैं। वे इस प्रकार हैं– ऋणादान, निक्षेप, अस्वामिविक्रय, सम्भूयसमुत्थान, दत्तस्यानपाकर्म, वेतनादान, संविदव्यतिक्रम, क्रयविक्रयानुशय, स्वामिपालविवाद, सीमाविवाद, वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य, स्तेय, साहस, स्त्रीपुंधर्म, विभाग, धूतसमाह्वय।[4] मनुस्मृति में व्यवहार सम्बंधी विस्तृत विवरण अध्याय 8 व अध्याय 9 में दिया गया है। न्याय व्यवस्था पर मनु का विवरण बहुत रोचक और व्यवस्थित तरीके से दिया गया है। मनु विश्व के सर्वप्रथम विधि–प्रणेता के रूप में सर्वमान्य हैं। इतना ही नहीं इस स्मृति का प्रचार सुदूर पूर्वी द्वीपों में भी था। वर्मा का 'धम्मथट' मनुस्मृति पर ही केन्द्रित है।

मनु ने अपराध 5 प्रकार के माने हैं, यथा– वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य, स्तेय, स्त्री संग्रहण तथा अन्य दण्ड। अपशब्दों के प्रयोग अथवा मन में क्षोभ उत्पन्न करने वाले शब्दों को वाक्पारुष्य कहा गया है। किसी को हाथ, पैर, मुद्रा, डण्डा, कीचड़ आदि से पीड़ा पहुँचाना दण्डपारुष्य है। स्तेय का तात्पर्य चोरी से है। मनु ने चोरी के दो रूप बताए हैं प्रच्छन्न और अप्रच्छन्न चोरी अर्थात् सामने व पीठ पीछे छिपकर चोरी करने वाले। मनु का यह भी कहना है कि चोर की चोरी सिद्ध होने पर ही चोर को मृत्युदण्ड दिया जाए अन्यथा नहीं। चोर को आश्रय देने वाले को भी वध योग्य माना गया है।[5]

मनुस्मृति के अध्याय 8 के श्लोक संख्या 352 से 387 में परस्त्री व्यभिचार करने वालो के सन्दर्भ में चर्चा करते हुए राजा को यह अधिकार दिया है कि वह ऐसे लोगों का अंग–भंग करके देश से निकाल दें।[6] मनु ने अन्य अपराधों में रिश्वत लेना, यातायात में किसी को चोट मारना और उसका मर जाना, वैद्य की असावधानी से मृत्यु आदि होना, असत्य गवाही देना आदि अनगिनत अपराध गिनाए हैं। सभी के लिए दण्ड की व्यवस्था भी तदनुसार ही बताई है।

मनुस्मृति में न्याय तथा विधि सम्बन्धी प्रगतिशील विचारधारा है। मनुस्मृति में राजा प्रारम्भिक एवं अंतिम न्यायालय है। सर्वोच्च न्यायालय के रूप में राजा दण्ड देने का अन्तिम अधिकारी है। राजा की भूमिका आधुनिक सुप्रीम कोर्ट जैसा ही है।[7] इस प्रकार न्याय व्यवस्था की सम्पूर्ण

(33)

भारत में न्यायिक सक्रियता व जनहितवाद

अर्चना गुप्ता*

सारां''।

व्यक्ति एवं समाज के सहअस्तित्व के लिए निर्धारित नियम एवम् सिद्धांत ही विधि है। मुनष्य की स्वाभाविक स्वार्थपरता एवम् उच्श्रृंखलता को नियंत्रि कर सामाजिक विघटन की प्रक्रिया को रोकने के लिए न्याय एवं न्याय–प्रशासन की आवश्यकता होती है। नई परिस्थितियों से साम्य एवं गतिशीलता स्थापित कर विकास का मार्ग प्रशस्त करने में भी न्याय–प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस तरह समाज के विभिन्न घटकों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए कानून व्यवस्था परमावश्यक है। न्याय प्रशासन का मुख्य उद्देश्य सत्य को प्रस्तुत करना तथा समाज को निर्धारित नियमों से बाँधकर रखना है। मनुष्य के लिए निर्धारित आचार संहिता का पालन सामाजिक संवृद्धि के लिए आवश्यक है। न्याय–प्रशासन समाज द्वारा स्वीकृत आचार संहित को बनाये रखने का एक सशक्त प्रयास है।
पिछले दो दशकों में भारत की न्याय व्यवस्था के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। इन दशकों में न्यायपालिका का आकार, प्रक्रिया, व्यवहार, क्षेत्राधिकार और विशेष रूप से उसका लक्ष्य ही बदल गया है। वर्तमान में न्यायपालिका का लक्ष्य व्यक्तिगत न्याय के साथ सामाजिक न्याय की स्थापना करना हो गया है। आज न्यायपालिका केवल न्याय प्रदान करने का ही कार्य नहीं कर रही है वरन् एक प्रशासक, सुधारक, अनुसंधानकर्ता और नीति–निर्धारक की भूमिका भी अदा कर रही है।

पिछले दो दशकों में भारत की न्याय व्यवस्था के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। इन दशकों में न्यायपालिका का आकार, प्रक्रिया, व्यवहार, क्षेत्राधिकार और विशेष रूप से उसका लक्ष्य ही बदल गया है। वर्तमान में न्यायपालिका का लक्ष्य व्यक्तिगत न्याय के साथ सामाजिक न्याय की स्थापना करना हो गया है। आज न्यायपालिका केवल न्याय प्रदान करने का ही कार्य नहीं कर रही है वरन् एक प्रशासक, सुधारक, अनुसंधानकर्ता और नीति–निर्धारक की

* शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। Email : babyarchana0412@gmail.com

दलितों की भागीदारी। चूंकि इस सम्मेलन का कांग्रेस ने बहिष्कार किया था, इसलिए यह किसी निर्णय पर पहुँचे बिना ही समाप्त हो गया।

डा० अंबेडकर ने साप्ताहिक हरिजन के लिए यह कहते हुये संदेश देने से इनकार कर दिया कि जाति-व्यवस्था को नष्ट किया बिना अछूतों का उद्धार संभव नहीं है, जैसा कि किसान आंदोलन के मामले में हुआ था, गाँधीवादी हरिजन कार्य भी, आंशिक रूप से नीचे से अधिक संभावनापूर्ण दबावों पर वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास किया था। तमिलनाडु में ई.वी. रामास्वामी नायकर का आत्मसम्मान आंदोलन चौथे दशक के आरंभ में तेजी से फैला इसके ब्राह्मणवादी विरोधी लोकवादी शैली विकसित कर ली जो 1932 में सोवियत संघ से लौटकर नायकर ने कोयम्बटूर में स्टालिन हाल का निर्माण करवाया और पूर्व कम्युनिस्ट नेता सिंगारवेलु चेट्टियार के नास्तिकवादी एवं समाजवादी लेखन के लिए अपनी पत्रिका कुडी आरासु के द्वार खोल दिये।

डा० अंबेडकर संवैधानिक एवं कानूनी कदमों के अंग थे। आजादी से पहले के मतभेदों के बावजूद कांग्रेस ने उन्हें संविधान की मसविदा (प्रारूप) समिति का अध्यक्ष बनाया और वे नेहरू की कैबिनेट में कानून मंत्री थे। लेकिन बाद में मतभेद पैदा हो गए उन्होंने सरकार छोड़ दी और अखिल भारतीय जनजाति महासंघ का निर्माण किया। इस संगठन ने चुनाव भी लड़े लेकिन आरक्षित सीटों में वह अधिकतर कांग्रेस से हार गयी। 1956 में उन्होंने फिर से धर्मांतरण की नीति अपना ली और इसे जरूरी बताया। वह जल्द ही बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया गया। दलित राजनीति का दूसरा काल 1960 से 1980 तक का है दलित आंदोलन ब्राह्मणवाद और पूँजीवाद के लिए घातक था, दीक्षा समारोह घातक नहीं था कम से कम इस घटना से हम उन परिस्थितियों को समझ सकते है जिनसे दलित आंदोलन को गुजरना पड़ा।

संदर्भ :-

1. सुमित सरकार-*आधुनिक भारत*-पृ0-329,330.
2. रजनी पाम दत्त-*आज का भारत*-पृ0- 410,417,423.
3. विपिन चन्द्र-*आजादी के बाद का भारत*-पृ0-645,646,647.
4. प्रवीण यू स्वी-*स्कूल क्या कहता है*-पृ0-40,41.
5. *बाबूराम और कांशीराम के संघर्ष*- नीलम गुप्ता पृ0-4445.
6. चन्द्र भारती-*मंदिर में क्या रखा है* पृ0-69,70,71.
7. विनोद अग्निहोत्री-*कांशी राम और उनकी बसपा* पृ0-80,81,85.
8. राकेश कुमार-*दलित मुक्ति के सरोकार*-पृ0146,147.
9. अंशुमाली रस्तोगी-*दलितों के नाम पर* पृ0-125,126,127.
10. गोपेश्वर सिंह-*दलित आंदोलन की धार*-पृ0 103,104.
11. महावीर कपूर-*दलित राजनीति के सरोकार*-पृ0 30,31.
12. *डा० अंबेडकर कांग्रेस एंड गाँधी* पृ0-108.
13. स्टोकर्ट, *कांग्रेस एण्ड दि राज* पृ0-121,122

भारत में गठबंधन की राजनीति : लोकतंत्र के बदलते आयाम

अर्चना गुप्ता

शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

"मिलीजुली सरकारों के गठन और जीवन तथा कार्यकरण के लिए जिस प्रतिभा और संस्कृति की आवश्यकता होती है, भारत की लोकतांत्रिक राजनीति में अभी तक वस्तुतः उसका अभाव रहा है। अस्थायी मिलीजुली, सरकारों या अल्पमत सरकारों के क्रम ने राज्य के संकट में योगदान किया है, क्योंकि राज्य सरकार के साथ गुंथा हुआ है।"[1]

भारत अपनी स्वतंत्रता के लगभग 65 वर्ष पूरे कर चुका है। इन 65 वर्षों में भारतीय राजनीति और शासन व्यवस्था में कुछ ऐसे आमूल परिवर्तन हुए हैं, जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। विशेषकर 1967 के बाद से भारतीय राजनीति में कुछ नये मोड़ आये, जैसे देश में एकदलीय प्रभुत्व का अन्त, केन्द्र तथा राज्यों में मिश्रित सरकारों की स्थापना, संविधान में बड़ी संख्या में मूलभूत संशोधन, संसद और न्यायपालिका के बीच सर्वोच्चता की समस्या, क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का सशक्त रूप में विकास आदि ऐसी घटनाएँ हैं, जिन्होंने भारतीय राजनीति और शासन के मूलस्वरूप को बहुत अधिक प्रभावित किया है। भारत में गठबंधन की राजनीति की शुरूआत 1967 के चतुर्थ आम चुनाव के बाद से हुई। इस चुनाव में कांग्रेस दल के राजनीतिक एकाधिकार का अन्त हो गया। इस चुनाव में केन्द्र में यद्यपि कांग्रेस दल को ही बहुमत प्राप्त हुआ, लेकिन इसे प्राप्त स्थानों में भारी कमी आयी। 1967 में जिन 16 राज्यों में विधानसभा के चुनाव हुए उनमें से आठ राज्यों में कांग्रेस सहित कोई भी राजनीतिक दल पूर्ण बहुमत पाने में असफल रहा। इस प्रकार देश के संवैधानिक इतिहास में पहली बार आठ राज्यों में मिश्रित मंत्रिमण्डल का निर्माण हुआ। वास्तविकता यह है कि मिली जुली सरकार का पूरा अनुभव 1967-71 के बीच ही हुआ। इन चार वर्षों में 32 राज्य सरकारों का निर्माण और अन्त हुआ।[2]

साधारणतया मिश्रित मंत्रिमण्डल का गठन उन देशों में होता है जहाँ अनेक छोटे-छोटे दल हों और कोई ऐसा प्रभावशाली राजनीतिक दल न हो जो, सदन में स्पष्ट बहुमत पा सके। ऑग के अनुसार, "मिलीजुली सरकार एक ऐसे सहयोग प्रबन्ध का नाम है, जिसमें विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य सरकार के गठन या मंत्रिमण्डल के निर्माण के लिए एक हो जाते हैं।" मिलीजुली सरकार राजनीतिक समुदायों तथा शक्तियों का गठजोड़ है जो अस्थायी और कुछ विशिष्ट प्रयोजनों के लिए होता है। राजनीतिक दलों का यह मिलन

विचारधारा की ऐतिहासिकता भी है। वैदिक काल में राजा, राजकीय, सामाजिक संगठन एवं न्यायिक संगठनों का उल्लेख मिलता है, किन्तु राज्य नामक संस्था का उल्लेख नहीं है। सभा, समिति जैसे संगठनों, सेना, युद्ध, कृषि आदि से स्पष्ट है कि वैदिक काल में भाग राजशक्ति का उदय हो चुका था। इतना अवश्य है कि राजशक्ति का स्रोत एवं केन्द्र सामाजिक संगठन थे। उत्तर वैदिक काल में राजशक्ति का स्पष्ट विकास होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों तथा सूत्र ग्रन्थों में राजा, मंत्री, सेनापति आदि इन तमाम घटकों का उल्लेख मिलने लगता है। इस आधार पर राज्य नामक संस्था का संगठन होता है। वस्तुतः परवर्ती युग अर्थात् अर्थशास्त्र, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों एवं महाकाव्यों में राज्य के सभी घटकों, उनके परस्पर सम्बन्ध आदि स्पष्ट रूप से मिल पाता है।

सन्दर्भ सूची:-
1. Max muller, A History of Sanskrit Literature, p.16, Beni prasad, The State in Ancient India, p.118, Allahabad, 1928
2. [illegible] मनुस्मृति में राज्य-व्यवस्था और गुप्तकाल, मेरठ, 2011
3. Aristotle, Politics (Barker trans.), p.118
4. [illegible] मनुस्मृति में राजधर्म, 1986, [illegible], पृ. 83
5. [illegible]
6. J.W. Garner, Political Science and Government, Calcutta, 1951, p.49
7. A.D. Ballard, Elements of Jurisprudence, 6th Edition, p.40
8. J.K. Bluntshli, Theory of State, Oxford, 1885, p.23
9. J.W. Burgess, Political Science and Comparative Constitutional Law, London, 1890, vol.1, p.51
10. Aristotle, Politics Translated by Benjamin, I, New York, 1943, Book I, p.61
11. Bodin, J, Quoted in Garner, Political Science and Government, op.cit., pp.47-48
12. Bentham, J.A., Fragment of Government, London, 1931, p.137
13. Willough W.W. The Nature of State, London, 1922, p.192
14. Sabine, G.H., History of Political Theory, London, 1966, p.402
15. H.J. Laski, A Grammar of Political Theory, London, 1950, p.21
16. [illegible], 1965, पृ. 396
17. N.N. Law, Aspects of Ancient Indian Polity, Calcutta, 1960, p.1
18. A.S. Altekar, State and Government in Ancient India, Delhi, 1958, p.42
19. [illegible]
20. [illegible]
21. K.N. [illegible], The [illegible] of Sovereignty and State in Indian Political Thought, Bombay, 1963, p.6
22. [illegible] 1615
23. [illegible] 1615
24. [illegible]
25. [illegible], 1974, [illegible], पृ. 61-59
26. [illegible], The State in Ancient India, Allahabad, 1928, Chapter III, pp. 202-42
27. B.A. Saletore, Ancient Indian Political Thought and Institutions, Calcutta, 1963, pp.140-47
28. K.P. Jayaswal, Hindu Polity, op.cit., pp-82, 83,84, 164-68
29. Altekar, State and Government in Ancient India, op.cit., pp. 19-30
30. U.N. Ghoshal, A History of Indian Political Ideas, 1959, p.539
31. V.P. Varma, Studies in Hindu Political Thought and its Metaphysical Foundations, B.R.S. XXXVIII, XXXIX
32. P.N. Banerjee, Public Administration in Ancient India, London, 1916, pp. 34-41
33. A.K. Sen, Studies in Hindu Political Thought, Calcutta, 1926, p. 16-48
34. R.S. Sharma, Aspect of Political Ideas and Institution in Ancient India, Delhi, 1959, Chapter III
35. [illegible]
36. [illegible]
37. [illegible]
38. W.H. Brown, Methodology of India, p. 284
39. Zimmer, Philosophy of India, p. 63
40. [illegible] 17/10
41. [illegible]
42. [illegible]
43. [illegible], पृ. 151
44. [illegible]
45. [illegible]
46. [illegible]
47. [illegible]

भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, वर्ष-सप्तम, अंक: द्वितीय, जुलाई-दिसम्बर, 2015 ISSN-2229-452X

भारतीय राजनीति में न्याय का प्राचीन व वर्तमान स्वरूप

अर्चना गुप्ता

न्याय का सम्बन्ध मानव संस्कृति के साथ अनन्य रूप से जुड़ा हुआ है। मानव जैसे-जैसे युगों के साथ अपने को जोड़ते हुए विकास करता गया, वह लगभग उसी क्रम में असभ्य से सभ्य भी होता गया। वस्तुतः प्राचीन भारत में अस्तित्व में रही न्याय की परम्परा उतनी ही पुरानी है जितनी की मानवता। भारत की समृद्ध एवं उन्नत न्याय परम्परा की नींव प्राचीन काल में ही पड़ी।

न्याय का प्राचीन स्वरूप-

भारतीय विधि विश्व की प्राचीनतम जीवित योजना है। प्राचीन भारतीय विधि का मूल तत्व ऋत है। न्याय के प्राचीन स्वरूप का वर्णन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है-

1. न्याय व्यवस्था धर्म से सम्बद्ध -

प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था धर्म से आबद्ध थी। 'धर्म' समस्त भारतीय शास्त्रीय चिन्तन में आधारभूत संप्रत्यय रहा है। भारतीय संस्कृति में 'धर्म' का तात्पर्य कर्मकाण्डों से नहीं है बल्कि धर्म सदाचार व कर्तव्यों के पालन में निहित है इस रूप में जिसका जो भी कर्तव्य है, उसका निष्ठापूर्वक पालन ही उसके लिए धर्म कहा जा सकता है। समाज में न्याय की स्थापना तभी हो सकती है जब प्रत्येक व्यक्ति अपने निर्धारित कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करें। न्याय में ही धर्म का तत्व निहित है, जब दण्ड द्वारा अशुभ का परिहार किया जाता है तब भी धर्म की स्थापना ही लक्ष्य होता है। वस्तुतः न्याय की अवधारणा धर्म की स्थापना को ही लक्ष्य करके विकसित की गयी है। प्राचीन भारत में न्यायालयों के लिए 'धर्माधिकरण' शब्द 'धर्म सभा' जैसे शब्द प्रयुक्त होते थे, तो न्यायाधीश को 'धर्माधिकारी' कहा जाता था। न्यायाधीश के आसन को 'धर्मासन' कहा जाता था। इन तथ्यों से प्रतीत होता है कि धर्म व न्याय एक दूसरे में समाहित थे।

2. न्यायाधीशों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर-

न्यायाधीश के गुणों का वर्णन बहुधा मिलता है। आपस्तम्बधर्मसूत्र[1] के अनुसार न्यायाधीशों में विद्वान, कुलीन, वयोवृद्ध, बुद्धिमान, चातुर्य तथा धर्म के प्रति सावधानी होनी चाहिए। नारद के अनुसार न्यायाधीश को अठारहों सम्पत्ति-विवाद सम्बन्धी कानूनों में, उनके 8000 उपभेदों, आन्वीक्षिकी वेद एवं स्मृतियों में पारंगत होना चाहिए। जिस प्रकार वैद्य शल्य चिकित्सा में पारंगत होने के कारण शल्य-प्रयोग से शरीर में घुसे लोहे के टुकड़े को निकाल देता है, उसी प्रकार कुशल न्यायाधीश को पेचीदे मामले में से धोखे को बाहर अलग निकाल देनी चाहिए। कौटिल्य[2] ने अमात्यों की नियुक्ति के लिए धर्म, अर्थ, काम एवं भय के अवसरों में प्रलोभन आदि से परीक्षा लेने की सम्मति दी है, किन्तु मंत्रियों के लिए सत्यता (ईमानदारी) एवं विश्वासपात्रता की जाँच सभी प्रकार की परीक्षाओं के सम्मिलित रूप में आवश्यक मानी है। इस प्रकार की जाँच प्रणाली को उपधा कहते हैं। नीतिवाक्यामृत[3] ने 'उपधा' की परिभाषा की है। कई प्रकार के उपायों से (गुप्तचरों द्वारा) धर्म, अर्थ, काम एवं भय के अवसरों में मनुष्यों का परीक्षण ही उपधा है।

3. न्यायिक कार्यों में पारदर्शिता व निष्पक्षता-

निष्पक्ष न्याय करना एवं अपराधी को दण्ड देना राजा के प्रमुख कार्यों में था। राजा न्याय का स्रोत माना जाता था। कौटिल्य[4] ने लिखा है कि दिन के दूसरे भाग में राजा को पौर-जनपदों (नागरिकों एवं ग्रामवासियों) के झगड़ों को निपटाना चाहिए। मनु[5] ने भी लिखा है कि लोगों के झगड़ों को निपटाने की इच्छा से राजा को ब्राह्मणों एवं मंत्रियों के साथ सभा (न्याय-भवन) में प्रवेश करना चाहिए और प्रति दिन